RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-1
Issue-10
October-2016

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

तेरहवीं लोकसभा आम चुनाव(1999)–एक विश्लेषण

रिन्कु कुमारी

पीएचडी राजनीति विज्ञान, पटना विश्वविद्यालय, पटना

ARTICLE DETAILS

Article History
Received: 03 October 2016
Accepted: 08 October 2016
Published Online: 10 October 2016

Keywords
13वीं लोक सभा आम चुनाव, राजग सरकार, कारगिल संघर्ष, एकल पार्टी प्रभुत्व, गठबंधन सरकार।

ABSTRACT

अगर भारत की चुनावी राजनीति पर सरसरी निगाह डाली जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि एकल पार्टी प्रभुत्व का अवसान सही मायने में 1999 के आम चुनावों में हुआ था। इसकी वजह यह थी कि 1977–80 के जनता सरकार कोई स्थायी प्रभाव छोड़ने में सर्वथा नाकाम रही थी। 1989–91 के बीच वाली सरकार और 1996–98 की गठबंधन सरकार–दोनों को कांग्रेस का परोक्ष समर्थन हासिल था। लेकिन 1999 के चुनावों ने पहली बार राजनीतिक रूप से अछूत समझी जानी वाली भाजपा की ऐसी सरकार बनने का मार्ग प्रशस्त किया, जो भारतीय राजनीति में अपना कार्यकाल ठसक के साथ पूरा करनेवाली पहली गैर–कांग्रेसी सरकार बनी। इसने कई भ्रमजाल को तोड़ा और भावी राजनीति की दशा और दिशा तय करनेवाले असर छोड़े। अभी तक एकच्छत्र या एकला चलो या गठबंधन राजनीति से अलग राह पर चलनेवाली कांग्रेस को इन चुनावों ने यथार्थवाद से सामना करवाया कि उसके लिए आगे की राह तभी संभव है जब वह छोटी पार्टियों को अपने साथ लेकर उदीयमान भाजपा का सामना कर सकती है। कांग्रेस के पास इस वास्तविकता को स्वीकार करने का फायदा 13वीं लोकसभा चुनावों में तो नहीं पर 14वीं लोक सभा चुनावों में अवश्य मिला। जबकि भाजपा को इन चुनावों ने इस सच से सामना करवाया कि गठबंधन सरकारों और बेमेल पार्टियों को एक साथ लेकर सरकार बनाना कितनी टेढ़ी खीर है। अपने दम पर सरकार बनाने के लिए उसे पूरे 10 वर्षों का वनवास झेलना पड़ा, जो 16वीं लोक सभा चुनावों में जाकर खत्म हुआ। 1999 के चुनावों में कारगिल संघर्ष का प्रत्यक्ष प्रभाव था और राष्ट्रवादी भावनाओं का चुनावों पर पड़नेवाले प्रभाव खुल कर दृष्टिगत हुए। भाजपा को जहां इसका लाभ हुआ, वहीं इस नए आयाम ने कांग्रेस के सामने अलग तरह की समस्या खड़ी कर दी। भाजपा जहां खुलकर इस कार्ड का इस्तेमाल कर रही थी, जिसका उसे लगातार फायदा होता रहा, जबकि कांग्रेस रक्षात्मक रणनीति बनाने को बाध्य हुई। प्रस्तुत शोध–आलेख में इन्हीं सब बिन्दुओं की विवेचना की गई है।

प्रस्तावना

अटल बिहारी वाजपेयी की 13 महीने पुरानी सरकार सदन में विश्वास मत न साबित कर पाने की वजह से गिर गई। इसके बाद सितंबर–अक्टूबर 1999 में 13वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। इस बार कांग्रेस की कमान सोनिया गांधी के हाथों में थी हालांकि उन्हें सफलता हाथ नहीं लगी। वह पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की अमेठी सीट से चुनाव लड़ीं और पहली बार सांसद बनीं। 13वीं लोकसभा में वह विपक्ष की नेता थीं। करगिल युद्ध के कुछ महीने बाद ही चुनाव हुआ था। करगिल यद्ध के समय अटल बिहारी वाजपेयी ही कार्यवाहक प्रधानमंत्री थे।

कैसे गिरी थी वाजपेयी सरकार

1998 में छक। गठबंधन से अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने थे लेकिन 13 महीने में ही सरकार गिर गई। दरअसल AIADMK प्रमुख जयललिता लगातार सरकार से कुछ मांगें कर रही थीं। उस वक्त तमिलनाडु में डीएमके की सरकार थी और एम करुणानिधि मुख्यमंत्री थे। जयललिता तमिलनाडु सरकार को बर्खास्त करने की मांग कर रही थीं। जयललिता ने ऐसा न करने पर छक। से समर्थन वापस ले लिया और बीजेपी को सदन में अविश्सवास प्रस्ताव का सामना करना पड़ा।

17 अप्रैल 1999 को लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पर बहस हुई लेकिन इससे पहले बीएसपी की नेता मायावती ने वोटिंग में हिस्सा न लेने का फैसला किया। फिर थोड़ी ही देर में उन्होंने अपना फैसला बदल दिया और एनडीए के विरोध में वोट कर दिया। अब सदन की निगाहें कोरापुट से सांसद गिरधर गोमांग पर थीं। दरअसल दो महीने पहले ही गोमांग ओडिशा के मुख्यमंत्री बने थे। ऐसे में छह महीने के भीतर उन्हें ओडिशा में विधानसभा या विधान परिषद का सदस्य चुना जाना था लेकिन अभी उन्होंने लोकसभा से इस्तीफा नहीं दिया था। गोमांग ने बीजेपी सरकार के विश्वास प्रस्ताव के विरोध में वोट कर दिया। बीजेपी सरकार के पक्ष में 269 वोट पड़े थे और विरोध में 270 वोट पड़े थे। इसलिए गिरधर गोमांग की भूमिका आज भी चर्चा का विषय है। सदन में विश्वास मत न साबित कर पाने की वजह से कुछ महीने बाद ही तत्कालीन राष्ट्रपति केआर नारायणन ने संसद भंग कर दी लेकिन वाजपेयी कार्यवाहक प्रधानमंत्री बने रहे।

करगिल युद्ध

कश्मीर मसले को लेकर पाकिस्तान के साथ हुए करगिल युद्ध को कुछ ही महीने बीते थे कि चुनाव हो गए। ऐसे में युद्ध में भारत की सफलता का लाभ भी अटल बिहारी वाजपेयी को मिला। दरअसल 3 मई 1999 को पाकिस्तान ने इस युद्ध की शुरुआत की। पाकिस्तान ने 5,000 सैनिकों के साथ करगिल की चोटी पर घुसपैठ करके कब्जा कर लिया। इसकी जानकारी सरकार को मिलने के बाद सेना ने उन्हें खदेड़ने का अभियान चलाया। पाकिस्तान के कई ठिकानों पर

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

हमले किए गए। कहा जाता है कि विश्व युद्ध के बाद करगिल का युद्ध ही ऐसा था जिसमें दुश्मन देश पर इतनी ज्यादा गोलाबारी की गई। दो महीने से ज्यादा यह युद्ध चला और 4 जुलाई को भारतीय सेना ने करगिल को वापस ले लिया। चुनाव के मुद्दे चुनाव के समय छक। गठबंधन में 20 पार्टियां थीं लेकिन कई और पार्टियां भी इसके समर्थन में आने को तैयार थीं। लंबे समय से केंद्र सरकार में अहम भूमिका में रहने वाली कांग्रेस पार्टी की अध्यक्ष सोनिया गांधी थीं। उनका गठबंधन उस समय छक। से कमजोर था। सोनिया गांधी कांग्रेस में नई–नई शामिल हुई थीं इसलिए चुनाव में उनको निशाने पर लिया गया। महाराष्ट्र में प्छब के नेता शरद पवार ने सोनिया के विदेशी होने का मुद्दा उठाया। चुनाव प्रचार ने एक नया मोड़ ले लिया और यह चुनाव विदेशी (गांधी) बनाम स्वदेशी (वाजपेयी) बन गया। करगिल युद्ध में भारत की सफलता का श्रेय भी वाजपेयी के नाम था। इसके अलावा बीजेपी ने आर्थिक उदारवाद, आर्थिक सुधार और औद्योगिक विकास को भी बखूबी भुनाया। कांग्रेस के हाथों में रहने वाले असम, ओडिशा और आंध्र प्रदेश में भी बीजेपी की बढ़त ने अन्य पार्टियों का विश्वास भी छक। में बढ़ा दिया।

देश में गठबंधन की राजनीति का दौर अपने शैशवकाल में ही था, लिहाजा राजनीतिक अस्थिरता का दौर भी जारी था। भाजपा की अगुवाई वाले गठबंधन यानी एनडीए की सरकार 1998 में महज तेरह महीने चलने के बाद गिर चुकी थी, लेकिन राजनीतिक तौर पर उसका अछूतोद्धार हो चुका था। उसके सहयोगी दलों की संख्या में इजाफा हो गया था।

उसकी सरकार गिरने के परिणामस्वरूप 1999 के सितंबर–अक्टूबर में देश को फिर आम चुनाव से रूबरू होना पडा। यह पांचवां मौका था जब लोकसभा के लिए मध्यावधि चुनाव हुआ। इस चुनाव में भी त्रिशंकु लोकसभा की स्थिति बनी। किसी भी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत हासिल नहीं हो सका। लेकिन एक वोट से सरकार गिरने की सहानुभूति और करगिल की लड़ाई की पृष्ठभूमि में हुए इस चुनाव में एक बार फिर भाजपा सबसे बड़े दल के तौर पर उभरी। उसके सहयोगी दलों की ताकत में भी इजाफा हुआ, लेकिन इसके बावजूद उसका गठबंधन बहुमत का आंकड़ा नहीं छू सका।

कांग्रेस को वोट ज्यादा मिले लेकिन सीटें पहले से भी कम मिलीं रू इस चुनाव का एक उल्लेखनीय और आश्चर्यजनक पहलू यह रहा कि कांग्रेस को भाजपा के मुकाबले सीटे भले ही बहुत कम मिलीं मगर उसे प्राप्त वोटों का प्रतिशत, भाजपा को प्राप्त वोटों के प्रतिशत से ज्यादा रहा। भाजपा को कुल 8,65,62,209 वोट मिले और पिछले चुनाव के मुकाबले उसे प्राप्त वोटों में 1.84 फीसद की गिरावट आई। जबकि कांग्रेस को प्राप्त वोटों में पिछले चुनाव के मुकाबले 2. 48 फीसद का इजाफा हुआ। उसे कुल 10,31,20,330 वोट प्राप्त हुए। यानी भाजपा के मुकाबले कांग्रेस को 4.65 फीसद वोट अधिक मिले, लेकिन प्राप्त सीटों के लिहाज से वह भाजपा से काफी पीछे रह गई। भाजपा यद्यपि सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी लेकिन पिछले चुनाव के मुकाबले उसे कोई अतिरिक्त फायदा नहीं हुआ। उसकी सीटें 182 ही बनी रहीं। 1998 के चुनाव में भी उसे इतनी ही सीटें मिली थीं। उसे सबसे करारा झटका उत्तर प्रदेश में लगा, जहां पिछली बार मिलीं 59 सीटों के मुकाबले इस चुनाव में उसकी सीटें घटकर आधी रह गई। यानी उसे उत्तर प्रदेश में महज 29 सीटें हासिल हुईं। उसके इस नुकसान की भरपाई महाराष्ट्र, बिहार और राजस्थान से हुई। वह अपने साथ कुछ और छोटे–छोटे क्षेत्रीय दलों को जोड़ने में कामयाब रही। उसके गठबंधन में छोटे–बड़े मिलाकर कुल 26 दल हो गए। इन सभी दलों ने एक बार फिर अटल बिहारी वाजपेयी को अपना नेता चुना। वाजपेयी ने सरकार बनाने का दावा पेश किया, जिसे राष्ट्रपति ने स्वीकार किया। वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए सरकार का गठन हुआ। पिछली बार की तरह इस बार भी सरकार बनाने और चलाने के लिए भाजपा को राम मंदिर, धारा 370 और समान नागरिक कानून जैसे तीन पुराने और प्रिय मुद्दों को दरकिनार करना पडा, जिसकी वजह से उनकी सरकार ने बगैर किसी बाधा के अपना कार्यकाल पूरा किया।

दूसरी तरफ कांग्रेस का नक्शा पूरी तरह बदल चुका था। चुनाव के पहले ही सोनिया गांधी पार्टी की कमान संभाल चुकी थीं। सीताराम केसरी को बेआबरू कर अपदस्थ किया जा चुका था। लेकिन शरद पवार, पीए संगमा और तारिक अनवर ने सोनिया गांधी के विदेशी मूल का मुद्दा उठाकर बगावत करते हुए अपनी नई पार्टी (राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी) बना ली थी। इसी स्थिति में कांग्रेस चुनाव मैदान में उतरी। उसके पास ऐसा कोई बडा मुद्दा नहीं था जिसके आधार वह भाजपा और उसके गठबंधन को चुनौती दे सकती।

पार्टी की कमान सोनिया गांधी के हाथों में आने का भी कोई असर नहीं हुआ। कांग्रेस देश के चुनावी इतिहास मे सबसे कम सीटें जीत पाई। उसकी सीटें 141 से घटकर मात्र 114 रह गई। कई राज्यों में उसका सफाया हो गया। राज्यों में तो उसकी सरकारें कायम रहीं, लेकिन केंद्र में वह अप्रासंगिक होती दिखने लगी।

जो प्रमुख दिग्गज लोकसभा पहुंचने में कामयाब रहे 1999 के चुनाव में जो प्रमुख नेता लोकसभा में पहुंचे थे उनमें भाजपा से अटल बिहारी वाजपेयी लखनऊ से और लालकृष्ण आडवाणी गांधीनगर से निर्वाचित हुए थे। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी भी अमेठी से जीतकर लोकसभा में पहुंची थीं। समाजवादी जनता पार्टी से पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर भी लोकसभा पहुंचने में कामयाब रहे थे। इनके अलावा भाजपा से जसवंत सिंह, मुरली मनोहर जोशी, यशवंत सिन्हा, सुषमा स्वराज, जगमोहन, सुंदरलाल पटवा, शांता कुमार, राम नाईक, वसुंधरा राजे, उमा भारती, सुमित्रा महाजन, रमन सिंह, शिवराज सिंह चौहान आदि भी लोकसभा में पहुंचे। कांग्रेस से लोकसभा पहुंचने वाले दिग्गजों में जाफर शरीफ, जितेंद्र प्रसाद, सुनील दत्त, नारायणदत्त तिवारी, प्रियरंजन दासमुंशी, पीएम सईद, बूटा सिंह, कमलनाथ, माधवराव सिंधिया, राजेश पायलट आदि प्रमुख रहे। जनता दल (यू) से जॉर्ज फर्नांडीस, शरद यादव, रामविलास पासवान, नीतीश कुमार, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सोमनाथ चटर्जी, वासुदेव आचार्य, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से इंद्रजीत गुप्त, गीता मुखर्जी, समाजवादी पार्टी से मुलायम सिंह यादव, राज बब्बर, अखिलेश यादव, राष्ट्रीय लोकदल से चौधरी अजीत सिंह, बहुजन समाज पार्टी से मायावती, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी से शरद पवार, पीए संगमा शिवसेना से मनोहर जोशी, सुरेश प्रभु, तृणमूल कांग्रेस से ममता बनर्जी, झारखंड मुक्ति मोर्चा के शिबू सोरेन और निर्दलीय

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

मेनका गांधी भी चुनाव जीतकर लोकसभा में पहुंचने वालों में प्रमुख थे।

जनता दल (एस) से पूर्व प्रधानमंत्री एचडी देवगौडा यद्यपि चुनाव हार गए थे, लेकिन बाद में उपचुनाव जीतकर लोकसभा पहुंचने में कामयाब हो गए थे। इसी लोकसभा में ज्योतिरादित्य सिंधिया भी लोकसभा में पहुंचे लेकिन उपचुनाव के जरिए। यह उपचुनाव उनके पिता माधराव सिंधिया की 2001 में एक विमान दुर्घटना में असामयिक मौत हो जाने की वजह से हुआ था।

फूलनदेवी दूसरी बार लोकसभा में पहुंचीं रू चुनाव जीतने वालों में एक नाम फूलनदेवी का भी था। अपने गांव में तथाकथित उच्च जाति के बाहुबलियों से बुरी तरह अपमानित और प्रताड़ित होने के बाद बागी बनकर लंबे समय तक चंबल के बीहड़ों में आतंक और प्रतिशोध का पर्याय रहीं मल्लाह जाति की फूलनदेवी को समाजवादी पार्टी ने उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर संसदीय क्षेत्र से अपनी उम्मीदवार बनाया था। इस सीट पर यह फूलनदेवी दूसरी जीत थी। इससे पहले वे 1996 में भी समाजवादी पार्टी के टिकट पर ही मिर्जापुर से जीतकर लोकसभा में पहुंची थीं।

उनका चुनाव जीतकर लोकसभा में पहुंचना भारत के संसदीय इतिहास की एक अनोखी घटना थी। फूलनदेवी को लोकसभा चुनाव में उम्मीदवार बनाने को लेकर मीडिया और समाज के संभ्रांत कहे जाने वाले तबके ने समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव पर काफी छींटाकशी की थी और उनके चुनाव जीतने पर भी खूब नाक–भौं सिकोड़ी थी, लेकिन हकीकत तो यही है कि फूलनदेवी के देश की सबसे बडी लोकतांत्रिक महफिल यानी लोकसभा में पहुंचने से हमारे लोकतंत्र की खूबसूरती में निखार ही आया था।

जो दिग्गज नहीं पहुंच सके लोकसभा में

इस चुनाव में हारने वालों में प्रमुख थे कांग्रेस के डॉ. मनमोहन सिंह, डॉ. कर्ण सिंह, आरके धवन, हरीश रावत, बलराम जाखड़, मोतीलाल वोरा, जगन्नाथ पहाड़िया, एआर अंतुले, अजित जोगी, राष्ट्रीय जनता दल के लालू प्रसाद यादव, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गुरुदास दासगुप्त, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के मोहम्मद सलीम, बहुजन समाज पार्टी के आरिफ मोहम्मद खान, भाजपा के अनंत कुमार, मुख्तार अब्बास नकवी, अकाली दल के सुरजीत सिंह बरनाला, जनता दल (एस) से पूर्व प्रधानमंत्री एचडी देवगौड़ा, प्रो. मधु दंडवते, जनता दल (यू) के शिवानंद तिवारी और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के तारिक अनवर।

लोकसभा अध्यक्ष का पद फिर सहयोगी दल को मिला रू पिछली लोकसभा की तरह इस लोकसभा का अध्यक्ष पद भी भाजपा को अपने सहयोगी दल को देना पड़ा। बारहवीं लोकसभा के अध्यक्ष तेलुगू देशम पार्टी के जीएमसी बालयोगी थे, जबकि तेरहवीं लोकसभा में यह पद शिवसेना के मनोहर जोशी को हासिल हुआ। बालयोगी का चुनाव भी सर्वसम्मति से हुआ था और जोशी भी सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए। दोनों का ही कार्यकाल अपने पूर्ववर्ती लोकसभा अध्यक्ष पीए संगमा की तरह कमोबेश निर्विवाद ही रहा। संगमा भी सत्तारूढ़ पार्टी के नहीं बल्कि सरकार को समर्थन दे रही कांग्रेस पार्टी की ओर से लोकसभा अध्यक्ष बने थे। इनमें से किसी पर भी पक्षपात या विपक्ष के साथ भेदभाव करने का आरोप नहीं लगा।

क्षत्रपों का दबदबा बढ़ा रू 1996 से लेकर 1999 तक के चुनावों में सिर्फ गठबंधन की राजनीति ही परवान नहीं चढ़ी बल्कि चुनावी राजनीति में क्षत्रपों के दबदबे की वास्तविक शुरुआत भी इसी दौर में हुई। 1999 चुनाव सूबाई क्षत्रपों का स्वर्णिम काल रहा। उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक और पूरब–पश्चिम से लेकर मध्य भारत तक इन क्षत्रपों की असरदार उपस्थिति दिखी। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी के खाते में 17 से बढ़कर 26 सीटें हो गईं और आंध्रप्रदेश में चंद्रबाबू नायडू की तेलुगू देशम का आंकड़ा 16 सीटों से बढ़कर 29 पर पहुंच गया।

बिहार में लालू प्रसाद यादव को झटका लगा और वे 17 से गिरकर सात पर अटक गए। जॉर्ज फर्नांडीस और शरद यादव के जनता दल (यू) की हैसियत 12 से बढ़कर 21 की हो गई। महाराष्ट्र में बाल ठाकरे की शिवसेना ने 15 का आंकड़ा बनाए रखा। बहुजन समाज पार्टी पहले 11, फिर पांच और 1999 में 14 सीटें जीतने में सफल रही। शरद पवार की पार्टी को 1999 में आठ सीटों पर जीत मिली और इतनी ही सीटें पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी के खाते में गईं।

पश्चिम बंगाल केरल और त्रिपुरा में वामपंथी मोर्चा भी अपनी बढ़त बनाए रखते हुए 40 सीटें जीतने में कामयाब रहा। तमिलनाडु में एम. करुणानिधि और जयललिता ने भी क्रमशरू 12 और 10 सीटें हासिल कर अपना दबदबा बनाए रखा। ओडिशा में नवीन पटनायक के बीजू जनता दल ने भी दस सीटों के साथ और हरियाणा में ओमप्रकाश चौटाल के इंडियन नेशनल लोकदल ने पांच सीटों के साथ अपनी हैसियत बनाए रखी। जम्मू–कश्मीर में फारूक अब्दुल्ला भी चार सीटों के साथ परिदृश्य में बने रहे।

इस बार एनडीए सरकार का पूरा कार्यकाल गठबंधन की राजनीति में एक नया अनुभव रहा। स्थिति यह हो गई कि गठबंधन राजनीति को हमेशा हिकारत से देखने वाली कांग्रेस को भी अब गठबंधन की राजनीति स्वीकार करनी पड़ी। उसने भी भाजपा विरोधी क्षेत्रीय दलों को साथ लेकर संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) का गठन किया। अपने रवैये में लाए गए इस बदलाव के उसे 2004 के आम चुनाव में अनुकूल परिणाम भी मिले।

चुनाव परिणाम

परिणाम बीजेपी के पक्ष में रहा और छक। गठबंधन को 269 सीटें मिलीं। इसके अलावा तेलुगु देशम पार्टी (29 सीट) ने भी छक। को समर्थन दिया जो गठबंधन का हिस्सा नहीं थी। कांग्रेस का प्रदर्शन बुरा रहा और इसे केवल 114 सीटें हासिल हुईं हालांकि इसे उत्तर प्रदेश में कुछ सीटें वापस मिल गईं। 1998 में तो उत्तर प्रदेश से कांग्रेस का सूपड़ा साफ हो गया था। इस चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी भी खत्म होने की कगार पर पहुंच गई थी। ब्व को मात्र 4 सीटें मिलीं और वह राष्ट्रीय पार्टी नहीं रही। पहली बार ऐसा हुआ था कि बिना कांग्रेस के कोई गठबंधन बहुमत के साथ सरकार बना रहा था। अटल बिहारी वाजपेयी ने तीसरी बार प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की और उन्होंने 2004 तक अपना कार्यकाल पूरा किया।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

संदर्भ सूची

1. रशीद्उद्दीन खान, भारत में लोकतंत्र,एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली
2. इंडिया टुडे में अवधेश नारायण शाही का आलेख, 14 मई, 1999
3. रजनी कोठारी, राजनीति की किताब, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, 2003
4. शर्मा ब्रजकिशोरः भारत का संविधानः पी0एच0आई0 लर्निंग प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2010
5. लक्ष्मीकान्त, एमः भारत की राजव्यवस्थाः मैक्ग्राहिल एजुकेशन प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2012,
6. कटारिया, सुरेन्द्रः भारतीय लोक प्रशासनः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012
7. विचार मीमांसा, जबलपुर में क्षितिज सिंह का आकलन आलेख, सितंबर 1999
8. कश्यप सुभाष, हमारा संविधान (भारत का संविधान और संवैधानिक विधि), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015

© RRIJM 2015, All Rights Reserved